5

बच्चों की समस्याएँ

क्रूरता और परपीड़न

क्रूरता विकृत प्रेम है, इसीलिए परपीड़न में आनन्द का अतिरेक हमेशा विकृत कामुकता होती है। क्रूर व्यक्ति कुछ दे नहीं पाता क्योंकि देना प्रेम का कृत्य है।

क्रूरता मनुष्य का सहज स्वभाव नहीं होता। पशु क्रूर नहीं होते। कोई बिल्ली, चूहे से इसलिए खिलवाड़ नहीं करती कि वह क्रूर है। उसके लिए यह खेल भर है। वह क्रूरता कर रही है, यह आभास उसे नहीं होता।

मनुष्यों में क्रूरता अक्सर अवचेतन उद्देश्यों के कारण उपजती है। समरहिल के लम्बे अनुभव में मुझे बिरले ही कोई ऐसा बच्चा मिला है, जो पशुओं को सताता हो। हाँ, कुछ साल पहले एक अपवाद ज़रूर था। तेरह साल के जॉन को उसके जन्मदिन पर एक पिल्ला मिला। उसकी माँ ने लिखा था, "वह जानवरों से प्यार करता है।" जॉन नन्हें स्पॉट को अपने साथ ले जाता। मैंने पाया कि वह कुत्ते से ठीक बर्ताव नहीं कर रहा है। मुझे लगा कि वह स्पॉट को अपने छोटे भाई जिम के रूप में देख रहा है, जो उसकी माँ का चहेता था।

एक दिन मैंने जॉन को स्पॉट को पीटते हुए देखा। मैं उस नन्हें कुत्ते के पास गया, उसकी गर्दन पर हाथ फेरकर कहा, "हलो जिम।" लगता है कि मैंने उसे इस बात के प्रति सचेत कर दिया कि वह अपने छोटे भाई का गुस्सा उस निरीह पिल्ले पर निकाल रहा है। उसने इसके बाद पिल्ले को नहीं पीटा। पर मैंने केवल उसके लक्षण भर को छुआ था। दूसरे को सताने में आने वाले आनन्द का इलाज मैं नहीं कर सका था।

मुक्त और प्रसन्न बच्चों के क्रूर होने की सम्भावना कम है। कई बच्चों में क्रूरता उन पर हुई वयस्कों की क्रूरता के कारण जन्मती है। कोई खुद, बिना दूसरों को पीटने की इच्छा के, पिट नहीं सकता। शिक्षक की तरह तब आप खुद भी किसी अपने से कमज़ोर व्यक्ति को पीटने के लिए चुनते हो। किसी भी कठोर अनुशासन वाले स्कूल के बच्चे, समरहिल के बच्चों से कहीं ज़्यादा क्रूर होते हैं।

क्रूरता का हमेशा तर्क से स्पष्टीकरण दे दिया जाता है- *तुम्हें पीटने से मुझे ही ज़्यादा तकलीफ होती है*। ऐसे कम ही होंगे जो ईमानदारी से यह कहें कि, "मैं लोगों को इसलिए पीटता हूँ क्योंकि मुझे इससे संतोष मिलता है।" जबकि पिटाई का असली कारण यही होता है। वे दूसरों को पीटने में आने वाले आनन्द को

नैतिकता की आड़ में छुपाते हैं। "मैं अपने बच्चे को नाजुक नहीं बनाना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि वह इस दुनिया में जी सकने में सक्षम बने जो उसे न जाने कितनी ठोकरें लगाएगी।" "मैं अपने बेटे को इसलिए ठोकता हूँ कि बचपन में मैं खूब ठुका हूँ, और उससे मुझे बड़ा फायदा हुआ था।"

जो माता-पिता अपने बच्चों को पीटते हैं वे हमेशा ऐसे ही स्पष्टीकरण देते हैं। मुझे आजतक ऐसे माँ-बाप नहीं मिले जो यह कहें कि, "मैं अपने बच्चे को इसलिए पीटता हूँ क्योंकि मैं उससे नफरत करता हूँ। मैं अपने आप से, अपनी बीबी से, अपनी नौकरी से, अपने सगे-सम्बंधियों से, सबसे नफरत करता हूँ। मैं अपने बेटे को इसलिए पीटता हूँ क्योंकि वह छोटा है और पलटकर मुझे पीट नहीं सकता। मैं उसे इसलिए पीटता हूँ क्योंकि मैं अपने बॉस से डरता हूँ। जब वह मुझे दफ्तर में डपटता है तो घर लौटकर मैं अपना गुस्सा, अपने बेटे पर निकालता हूँ।"

अगर माता-पिता खुद से यह सब पूरी ईमानदारी से कह सकें, तो उन्हें बच्चों को पीटने की ज़रूरत ही न लगे। क्रूरता अज्ञानता और खुद से नफरत करने की भावना से जन्मती है। क्रूरता दूसरों को तकलीफ देने में संतोष पाने वाले को अपने विकृत स्वभाव को पहचानने से भी बचाती है।

हिटलर की जर्मनी में यातना शिविरों (कॉन्संट्रेशन कैम्पों) में यहूदियों पर हुए अत्याचार विकृत यौन प्रवृत्तियों वाले लोगों द्वारा किए गए। बच्चे को घर या स्कूल में पीटना ठीक वैसा ही है जैसा यातना शिविरों में यहूदियों को यातना देना। अगर वहाँ इस यातना का मूल कारण यौन विकृति थी, तो घरों और स्कूलों में मारपीट में आनन्द लेने वाले की भावना का भी शायद यही कारण हो।

मानसिक क्रूरता को झेलना, शारीरिक क्रूरता झेलने से कहीं ज़्यादा मुश्किल है। सरकारी कानून से स्कूलों में मार-पिटाई पर तो पाबन्दी लगाई जा सकती है, पर कोई भी कानून उस व्यक्ति तक नहीं पहुँच सकता जो मानसिक यातना देता है। माता-पिता की कड़वी और द्वेषपूर्ण ज़बान बच्चे को इतना नुकसान पहुँचा सकती है, जिसका बखान नहीं किया जा सकता। हम उन पिताओं को पहचानते ही हैं जो अपने बेटों पर फब्तियाँ कसते हैं। *अरे सत्यानाशी, तुमसे कोई भी काम ढंग से किया नहीं जाता*। ऐसे पुरुष अपनी पत्नियों के प्रति अपनी नफरत जताने के लिए लगातार नुक्ताचीनी करते हैं। ऐसी पत्नियाँ भी होती हैं जो अपने पति व बच्चों को डाँट-डपटकर उन पर हुक्म चलाती हैं। अपनी पत्नी की नफरत बच्चों पर निकालने वाले पति एक खास तरह की मानसिक क्रूरता दर्शाते हैं।

कई बार शिक्षक तिरस्कार और तानों के माध्यम से मानसिक क्रूरता जताते हैं। किसी भयभीत और निरीह बच्चे पर फब्तियाँ कसते समय उनकी अपेक्षा यह रहती है कि बाकी बच्चे उस पर ज़ोर-ज़ोर से हँसें।

बच्चे कभी क्रूर नहीं होते, बशर्ते उनकी किसी गहन भावना का दमन न किया गया हो। आज़ाद बच्चे खुद से नफरत नहीं करते। इसलिए वे दूसरों से भी घृणा नहीं करते, क्रूर नहीं होते।

हरेक नन्हें 'गुण्डे' का जीवन किसी न किसी तरह तोड़ा-मरोड़ा गया होता है। अक्सर वह दूसरों के साथ वही करता है जो उसने झेला होता है। हर पिटाई के साथ बच्चे में दूसरों को पीड़ा देने की इच्छा जगती है या फिर वह दूसरों को वही पीड़ा देता है।

जिन बच्चों का दमन किया जाता है उनके मज़ाक भी क्रूर होते हैं। किसी को उल्लू बनाने की वारदातें समरहिल में मैंने बिरले ही देखी हैं। ऐसी जो घटनाएँ हुई हैं वे निजी स्कूल से आए नए छात्रों के दिमाग की उपज रही हैं। कभी-कभार छुट्टियों के बाद, घरेलू दमन झेलकर लौटने पर बच्चे छेड़छाड़, साइकिल छुपाना जैसी हरकतें करते हैं। पर यह दौर सप्ताह भर से ज़्यादा नहीं चलता। समरहिल का हँसी-मज़ाक अमूमन दयापूर्ण ही होता है। इसका कारण यही है कि बच्चों को अपने शिक्षकों से प्रशंसा और प्यार मिलता है। जब नफरत और भय की ज़रूरत न रहे तो बच्चे अच्छा व्यवहार करते हैं।

आपराधिकता

कई मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि बच्चा जन्म से अच्छा या बुरा पैदा नहीं होता। उसमें परोपकार और अपराध, दोनों ही वृत्तियाँ मौजूद होती हैं। मेरा मानना है कि बच्चे में अपराध या द्वेष की स्वाभाविक वृत्ति नहीं होती। बच्चे में अपराध वृत्ति विकृत प्रेम के रूप में उभरती है। यह क्रूरता की क्रांतिकारी अभिव्यक्ति है। प्यार की कमी ही इसकी जड़ है।

एक दिन मेरा एक नौ वर्षीय छात्र अपने आप खेल रहा था। वह धीमी आवाज़ में गुनगुना रहा था, "मैं माँ को मार डालना चाहता हूँ।" यह अवचेतन आचरण था क्योंकि उस वक्त वह एक नाव बना रहा था सो उसका पूरा ध्यान नाव बनाने में लगा हुआ था। सच्चाई यह है कि उसकी माँ अपनी ज़िन्दगी जीती है और उससे मिलने भी बिरले ही आती है। वह अपने बेटे को प्यार नहीं करती। यह बात वह अवचेतन रूप से समझता है।

पर इस प्यारे से लड़के ने अपनी ज़िन्दगी की शुरुआत हिंसक विचारों से नहीं की थी। यह तो वही पुरानी कहानी है, *अगर मुझे प्यार नहीं मिलता तो नफरत ही सही।* बच्चों में अपराध के प्रत्येक उदाहरण की जड़ में प्रेम का अभाव होता है।

नौ साल के एक दूसरे छात्र के मन में ज़हर का डर सा था। उसे डर लगता था कि उसकी माँ उसे ज़हर दे डालेगी। वह अक्सर कहता था, “मैं जानता हूँ कि तुम्हारा इरादा क्या है, तुम मेरे खाने में ज़हर मिला दोगी।” शायद मानसिक रूप से बीमार इस बच्चे के मन में माँ और छोटे भाई को ज़हर खिलाने की इच्छा जगती होगी। उसका डर बदले का डर था। *मैं माँ को ज़हर देना चाहता हूँ। कहीं वह बदले में मुझे ज़हर न खिला दे।*

अपराध नफरत की अभिव्यक्ति है। बाल अपराध वृत्ति का अध्ययन अन्ततः इस अध्ययन में बदल जाता है कि आखिर बच्चा क्योंकर नफरत करने लगता है। यह आहत अहम का सवाल होता है।

हम इस तथ्य को नज़रअंदाज़ नहीं कर सकते कि बच्चे मुख्यतः अहंकारी होते हैं। उनके लिए दूसरा कोई महत्वपूर्ण नहीं होता। जब उनका अहम संतुष्ट होता है तो उनमें अच्छाई पनपती है। पर अहम भूखा हो तो अपराध वृत्ति पनपती है। अपराध समाज से बदला लेता है क्योंकि समाज ने उसके अहम को प्यार देकर नवाज़ा नहीं होता।

अगर इन्सान आपराधिक वृत्ति के साथ पैदा होता, तो मध्यमवर्ग के भद्र परिवारों में भी उतने ही अपराधी पैदा होते जितने वंचित कच्ची बस्तियों में। पर सम्पन्न लोगों को अपने अहम की अभिव्यक्ति के अधिक मौके मिलते हैं। पैसे से मौज-मस्ती खरीदी जाती है, सुसंस्कृत परिवेश मिलता है। अपनी संस्कृति और अपने परिवार के प्रति गर्व की भावना आती है। यह सब व्यक्ति के अहम को पालते-पोसते हैं। पर गरीबों का अहम भूखा रह जाता है। चन्द ही गरीब बच्चे जीवन में किसी तरह की विशिष्टता हासिल कर पाते हैं। अपराधी बनकर, गुण्डा बनकर या दादा बनकर भी विशिष्टता हासिल की जा सकती है।

कई लोग मानते हैं कि खराब फिल्में देखने से बच्चे अपराधी बनते हैं। मुझे यह दूरदर्शी नज़रिया नहीं लगता। मुझे शंका है कि कोई फिल्म किसी को भ्रष्ट कर सकती है। किसी नवयुवक को एक फिल्म किसी अपराध को करने का कोई तरीका ज़रूर सुझा सकती है। पर अपराध वृत्ति का कारण पहले से मौजूद होता है। एक फिल्म किसी अपराध को कला का जामा पहना सकती है। पर जिसने पहले से अपराध करने का विचार नहीं किया हो उसे अपराध करने की बात नहीं सुझा सकती।

अपराध पहले स्तर पर एक पारिवारिक मामला है। दूसरे स्तर पर समुदाय का। हममें से जो ईमानदार होंगे वे ये स्वीकार करेंगे कि अपनी कल्पनाओं में हमने अपने परिवार की हत्या की है। मेरी एक छात्रा अपने परिवार के सभी सदस्यों की अचानक मौत की कल्पना करती थी। खासकर अपनी माँ की।

ऐसी हत्यारी इच्छाओं के मूल में सत्ता और ईर्ष्या होती है। कोई भी बच्चा सत्ता नहीं सह सकता। पर चार से सोलह वर्ष की उम्र में इतने बच्चों का दमन होता है कि मुझे आश्चर्य इस बात से ही होता है कि दुनिया में जितनी हो रही हैं, उससे अधिक हत्याएँ क्यों नहीं होतीं।

बच्चे में सत्ता पाने की इच्छा दरअसल प्रशंसा और प्रेम पाने की इच्छा होती है। बच्चा अपनी चेष्टाओं से प्रशंसा और ध्यान आकर्षित करता है। इसलिए अन्तर्मुखी बच्चों में (ऐसे बच्चे जो भीरू होते हैं, जिनमें मेल-जोल बढ़ाने की क्षमता नहीं होती) आपराधिक विचार मिलते हैं। अपनी सुन्दर छोटी बहन को मेहमानों के सामने नाचता देख साधारण दिखने वाली एक लड़की उसकी भयानक मृत्यु की कल्पना कर सकती है।

बहिर्मुखी बच्चों को नफरत करने के कम कारण मिलते हैं। वे हँसते हैं, नाचते हैं, गप्पे लड़ाते हैं। देखने-सुनने वालों की प्रशंसा उन्हें संतुष्ट करती है।

अन्तर्मुखी बच्चे एक कोने में बैठे सोचते रहते हैं कि क्या कैसे होना चाहिए। मेरे स्कूल का जो सबसे अन्तर्मुखी बच्चा है, वह हमारी सामाजिक संध्याओं में कोई हिस्सा नहीं लेता, कभी गाता-गुनगुनाता नहीं है। बच्चों के एक-दूसरे के साथ धक्कमपेल करने वाले खेल तक में वह शामिल नहीं होता। जब वह व्यक्तिगत पाठों के लिए मेरे पास आता है, तो वह बताता है कि एक निहायत उम्दा जादूगर उसका हुक्म मानता है। अगर वह कहे तो जादूगर तुरन्त एक रोल्स रॉयस गाड़ी उसकी खिदमत में पेश कर दे। एक दिन मैंने उसे एक कहानी सुनाई कि समरहिल के सारे बच्चे दुर्घटना के बाद एक द्वीप में फँस गए। लगा उसे कहानी पसन्द नहीं आई। मैंने कहा कि वह कहानी में मनचाहा बदलाव कर सकता है। उसने कहा कि कहानी कुछ यों बदल दीजिए कि अकेला मैं बच जाऊँ।

हम सब इस प्रवृत्ति से परिचित हैं। यह प्रवृत्ति है दूसरों को धकेलकर या गिराकर खुद ऊपर चढ़ने की। एक चुगलखोर की यही मानसिकता होती है, “सर, टॉमी गाली बक रहा था।” यानी मैं गाली नहीं बकता, *मैं तो बिल्कुल अच्छा लड़का हूँ।*

कल्पना में अपने दुश्मन को मारने और सच में उसका खून कर डालने में केवल कुछ डिग्री का ही अन्तर है। हम सबमें थोड़ी-बहुत प्यार की भूख है, यानी हम सब सम्भावित अपराधी हैं। मैं पहले इस बात पर इतराया करता था कि मनोवैज्ञानिक तौर-तरीकों के कारण मैं बच्चों को उनकी अपराधवृत्ति से छुटकारा दिला पाता हूँ। पर मुझे लगता है कि दरअसल यह श्रेय प्रेम को ही दिया जाना चाहिए। यह ढोंग करना कि मैं नए छात्र को प्यार करने लगता हूँ, गलत होगा। पर इतना ज़रूर है कि बच्चे यह समझते हैं कि मैं उनके अहम का सम्मान करता हूँ, इसलिए उन्हें चाहता भी हूँ।

आपराधिकता का वास्तविक इलाज है, बच्चे को वह जैसा है वैसा बने रहने की इजाज़त देना। यह मैंने सालों पहले उस वक्त सीख लिया था जब मैं होमर लेन के *लिटिल कॉमनवैल्थ* में गया था। उसने अपराधी बच्चों को, वे जैसे थे, वैसे बनने की आज़ादी दी और वे सुधर गए। कच्ची बस्तियों में अपने अहम की तुष्टि के लिए सबका ध्यान खींचने का काम असामाजिक आचरण द्वारा ही किया जा सकता है। लेन ने मुझे बताया था कि ये बाल-अपराधी अदालत में अपना बयान देते समय गर्व से चारों ओर नज़र डालते हैं। पर लेन के साथ जाकर जिन बाल-अपराधियों ने कृषक समूह बनाया, उन्होंने अपने लिए नए मूल्य पाए, सामाजिक मूल्य पाए, अच्छे मूल्य पाए। डोरसेट फार्म में जो लेन ने कर दिखाया मेरे लिए वह अपने आप में इस बात का पर्याप्त सबूत है कि बच्चों में जन्मजात अपराध वृत्ति नहीं होती।

मुझे एक नया लड़का याद आता है जो डोरसेट फार्म से भागा था। लेन उसके पीछे-पीछे दौड़े और उसे पकड़ने में सफल रहे। लड़के की पिटने की आदत थी। उसने बचाव में बाँह से चेहरा ढँक लिया। लेन मुस्कुराए और उसकी जेब में कुछ पैसे डाल दिए।

"यह किसके लिए?" लड़के ने हकलाते हुए पूछा।

लेन ने कहा, "ट्रेन से घर लौटो, पैदल न जाना।" वह लड़का उसी रात कॉमनवैल्थ लौट आया।

मैं इस तरीके के बारे में सोचता हूँ और फिर अधिकांश सुधार गृहों के कठोर कायदे-कानूनों के बारे में। कानून दरअसल अपराधी बनाता है। पिता की कठोर आवाज़ में घर का कानून तमाम पाबन्दियाँ लगा, बच्चे के अहम को दबाता है। राज्य का कानून, घरेलू कानून की अवचेतन यादें जगाता है।

दमन हमेशा अवज्ञा जगाता है। स्वभाविक है कि अवज्ञा बदले की भावना पैदा करती है। अगर हमें अपराध खत्म करने हैं तो हमें वे सब चीज़ें खत्म करनी होंगी जो बच्चों में बदला लेने की इच्छा जगाती हैं। हमें बच्चे के प्रति प्यार और सम्मान दर्शाना होगा।

चोरी

हमें दो तरह की चोरियों में फर्क करना होगा : एक सामान्य बच्चे द्वारा की गई चोरी और किसी मनोरोगी द्वारा की गई चोरी।

एक साधारण बच्चा भी चोरी करता है। ऐसा, वह कुछ पाने के लोभ में करता है। या फिर अपने दोस्तों के साथ मिलकर कुछ जोखिम उठाने की इच्छा से करता है।

उसके मन में *मेरा* और *तेरा* का फर्क पक्का नहीं होता। एक उम्र तक समरहिल के कई बच्चे ऐसी चोरियाँ करते हैं। उन्हें उम्र के इस चरण को जी लेने की छूट दी जाती है।

कई स्कूली मास्टरों ने अपने बगीचों पर बात करते समय मुझे बताया कि उनके छात्र उनके फल चुराते हैं। समरहिल के बड़े से बगान के पेड़, फलों से लदे रहते हैं। पर हमारे बच्चे बिरले ही फल चुराते हैं। कुछ समय पहले स्कूल की आमसभा में दो बच्चों पर फल चुराने का आरोप लगाया गया। वे नए लड़के थे। जब उन्हें अपनी आत्मा की आवाज़ों से मुक्ति मिल गई तो फल चुराने में उनकी रुचि न रही।

स्कूल की चोरियाँ अधिकतर सामूहिक होती हैं। इससे लगता है कि दरअसल जोखिम उठाने की इच्छा की इसमें प्रमुख भूमिका होती है। बल्कि इतना ही नहीं, इसमें दूसरों के सामने प्रदर्शन करने, अपनी जुगत-भिड़ाने की और नेतृत्व की क्षमता दिखाने की इच्छाएँ भी जुड़ी होती हैं।

बिरले ही कोई एकल चोर दिखता है। अमूमन ऐसा चोर एक चालाक लड़का होता है, जिसका चेहरा फरिश्तों सा भोला-भाला होता है। वह समरहिल में अक्सर बच जाता है क्योंकि हमारे यहाँ कोई ऐसा चुगलखोर नहीं है जो उसका राज़ बता दे। चेहरे से किसी चोर को पहचाना नहीं जा सकता। हमारे यहाँ अबोध चेहरे और आँखों वाला एक लड़का है। मुझे शक यह है कि भण्डारघर से कल रात जो फलों का डिब्बा गायब हुआ उसके बारे में उसे सब पता है।

इस सबके बावजूद तेरह साल की उम्र में चोरी करने वाले तमाम बच्चे, बड़े होकर ईमानदार नागरिक बनते हैं। सच्चाई यह लगती है कि हम जितना सोचते हैं, उससे कहीं ज़्यादा समय बच्चों को बड़े होने में लगता है। यहाँ बड़ा होने से मेरा मतलब सामाजिक व्यक्ति बनने से है।

बच्चा दरअसल आत्म-केन्द्रित होता है। यह चरण करीब-करीब वयःसन्धि की उम्र तक चलता है। उस वक्त तक वह अपनी पहचान को दूसरों के साथ नहीं जोड़ पाता। *मेरा-तेरा* का विचार वयस्क विचार है। बच्चे जब परिपक्व होते हैं तभी उनमें यह विचार विकसित होता है।

अगर बच्चों को प्यार मिले, वे आज़ाद हों, तो *समय के साथ* वे अच्छे और ईमानदार ही बनते हैं। हो सकता है कि आपको लगे कि बात को अति सरल बनाकर कहा जा रहा है। पर मैं व्यवहार और इस सिद्धान्त में आड़े आने वाली परेशानियों से परिचित हूँ।

समरहिल में मैं ऑइस-बॉक्स या पैसों का डिब्बा खुला नहीं छोड़ सकता। हमारे स्कूल की आमसभा में बच्चे एक-दूसरे पर सन्दूक खोलने का आरोप लगाते हैं।

समुदाय में एक ही चोर हो तो पूरा समुदाय ताले-चाबी वाला बन जाता है। पचपन साल पहले विश्वविद्यालय के छात्रों के कमरे में मैं अपने ओवरकोट की जेब में कोई किताब छोड़ने से डरता था। मैंने यह भी सुना है कि कुछ संसद सदस्य अपने कोट और ब्रीफकेस में कोई कीमती सामान छोड़ने से हिचकिचाते हैं।

व्यक्ति के विकास में ईमानदारी का विचार काफी बाद में, निजी सम्पत्ति की अवधारणा के साथ विकसित हुआ। ईमानदारी के बारे में एक सच है, भय। किसी प्रकार की अमूर्त ईमानदारी मुझे अपने आयकर के बारे में झूठ बोलने से नहीं रोकती। बल्कि जो रोकता है वह है पकड़े जाने पर अपमान का डर। यह भय कि मेरी साख मिट्टी में मिल जाएगी, घर और काम बरबाद हो जाएगा।

अगर किसी भी मसले पर कोई नियम बनता है तो यह मानकर चलना चाहिए कि लोग उसके विपरीत आचरण करते रहे हैं। जिस देश में पूर्ण शराबबन्दी हो चुकी हो, वहाँ यह नियम नहीं होगा कि शराब पीकर वाहन चलाना जुर्म है। सभी देशों के चोरी-डकैती, धोखाधड़ी आदि के कानून इसी विश्वास पर आधारित हैं कि मौका मिला, तो लोग चोरी-डकैती और धोखाधड़ी करेंगे। और यह सच भी है।

सभी वयस्क कम या अधिक बेईमान होते हैं। बहुत कम लोग ऐसे होंगे जो कस्टम अधिकारी की नज़र बचाकर कुछ सामान साथ न ले आते हों। उससे भी कम ऐसे लोग होंगे जो आयकर बचाने के लिए हेरा-फेरी न करते हों। फिर भी उनमें से हरेक सच में इस बात से परेशान हो उठेगा कि उसके बेटे ने एक चवन्नी चुराई है।

दूसरी ओर, एक-दूसरे के साथ लेन-देन में लोग काफी ईमानदार होते हैं। किसी के यहाँ खाने पर जाने पर उनका चाँदी का एक चम्मच चुरा लेना आसान होता है। पर यह विचार शायद ही मन में उठे। पर अगर टिकट जाँचने वाले ने आपके वापसी टिकट को पंच न कर दिया हो, तो उसे फिर से इस्तेमाल करने की बात आप ज़रूर सोच सकते हैं। दरअसल वयस्क, एक व्यक्ति और एक संस्था में, चाहे वह निजी हो या सरकारी, अन्तर करते हैं। बीमा कम्पनी को धोखा देने में कोई हर्ज़ नहीं माना जाता पर परचून का सामान बेचने वाले को धोखा देने की बात भी नहीं सूझती। पर बच्चे ऐसा कोई अन्तर नहीं करते। वे छात्रावासों में अपने साथ रहने वाले लड़कों, अपने शिक्षकों, यहाँ तक कि दुकानों तक से कुछ उठा लेते हैं। सभी बच्चे शायद चोरी न करें, पर चुराई गई चीज़ों में हिस्सेदारी बाँटने में उन्हें कोई आपत्ति नहीं होती। ज़ाहिर है कि ऐसी बेईमानी जितनी गरीब बच्चों में मिलती है, उतनी ही सम्पन्न परिवारों के बच्चों में भी मिलती है।

मैंने पाया है कि मौका मिलने पर कुछ बच्चे चोरी करते हैं। बचपन में मैंने चोरी इसलिए नहीं की क्योंकि मुझे पूरी तरह अनुकूलित कर दिया गया था। चोरी का मतलब था पकड़े जाने पर जमकर धुलाई और नरक की आग में निरन्तर जलना।

पर स्वाभाविक है कि मेरी तरह आसानी से न डरने वाले बच्चे चोरी करेंगे। फिर भी मैं कहता हूँ कि प्यार के वातावरण में पले-बढ़े बच्चे चोरी करने की उम्र पार करने के बाद ईमानदार इन्सानों के रूप में परिपक्व होंगे।

दूसरी तरह की चोरी, आदतन या विवशता में की जाने वाली चोरी, बच्चे में मनोरोग का प्रमाण है। अमूमन यह प्यार की कमी की निशानी होती है। इसका उद्देश्य अवचेतन होता है। हरेक घोषित बाल अपराधी को लगता है कि उन्हें कोई नहीं चाहता। ऐसी चोरी किसी मूल्यवान वस्तु को पा लेने की कोशिश का प्रतीक है। चाहे पैसे चुराए जाएँ, या गहने, या कुछ और, यह प्रेम चुराने की अवचेतन कोशिश है। इसका इलाज है बच्चे को भरपूर प्यार दिया जाना। जब मैं, अपनी तम्बाकू चुरा लेने वाले बच्चे को कुछ पैसे देता हूँ, तो मैं उसके चेतन विचारों को नहीं, उसकी अवचेतन भावना को सम्बोधित करता हूँ। सम्भव है कि वह सोचे कि मैं निहायत बेवकूफ हूँ। पर वह जो सोचता है उससे फर्क नहीं पड़ता। फर्क पड़ता है उससे, जो वह महसूस करता है। समय के साथ चोरी-चपाटी बन्द हो जाती है क्योंकि जिस प्रेम को वह अवचेतन रूप से चुरा रहा था वह उसे स्वतः मिलने लगता है। फिर उसे चोरी की दरकार नहीं रहती।

इस सन्दर्भ में मैं उस लड़के का वाकया बताना चाहता हूँ जो हमेशा दूसरे बच्चों की साइकिल चलाया करता था। आम सभा में उस पर आरोप लगा, "वह दूसरों की साइकिल काम में लेकर, निजी सम्पत्ति के नियम को लगातार तोड़ता है।" फैसला हुआ, "वह गुनहगार है," सज़ा दी जाए। सज़ा थी, "समुदाय को कहा गया कि उसके लिए साइकिल खरीदने के लिए सब चन्दा करें।" समुदाय ने चन्दा दिया।

चोरी के बदले ईनाम देने की बात को मैं सीमित करना चाहूँगा। अगर बच्चे की मनोवृत्ति घटिया है, या उसका भावनात्मक विकास रुक गया है, तो इसका उल्टा असर होगा। अगर उसका दिमाग चढ़ा हुआ है तो उसे प्रतीकात्मक उपहार से फायदा नहीं होगा। समस्यात्मक बच्चों के साथ काम करते समय मैंने पाया है कि प्रायः हरेक नन्हें चोर की उस पुरस्कार के प्रति अच्छी प्रतिक्रिया रही जिसे चोरी के बदले दिया गया था। असफलता केवल उन्हीं परिस्थितियों में हासिल हुई, जहाँ चोरी वाला बच्चा समझ-बूझकर चोरी कर रहा था और जिसे पुरस्कार की आड़ में छिपे इलाज से सुधारा नहीं जा सकता था। स्थिति उस समय और पेचीदा हो जाती है जब चोरी माता-पिता के प्रेम के अभाव और यौन भावनाओं के दमन के कारण की जाती है। इस श्रेणी में वे लोग आते है जिन्हें चोरी का रोग *क्लैप्टोमैनिया* होता है। शिक्षक अपने स्तर पर ऐसे बच्चों की पूरी मदद नहीं कर सकते। दमन को शुरू करने वाले होते हैं, माता-पिता। वे अगर प्रतिबंध लगाना बन्द करें तो बच्चा सुधर सकता है।

मेरे स्कूल में एक बार एक सोलह साल का लड़का भेजा गया। वह जब स्टेशन पर उतरा तो उसके हाथ में आधा टिकट था, जो उसके पिता ने लंदन में यात्रा के लिए खरीदा था। यानी उसकी उम्र कम बताते हुए। जिन बच्चों को बेईमानी की आदत पड़ चुकी है, उनके माता-पिता से मैं कहना चाहूँगा कि वे अपने गिरहबान में झाँकें। पता करने की कोशिश करें कि उनके किस आचरण ने बच्चे को बेईमान बनाया है।

जब माता-पिता बच्चों की बेईमानी के लिए बदमाश दोस्तों, फिल्मों की हिंसा, या पिता के सेना में होने की वजह से बच्चे पर नियंत्रण की कमी आदि को दोष देते हैं, तो वे दरअसल भूल करते हैं। जो बच्चा घर में प्रेम और प्रशंसा के साथ पलता है, सेक्स के प्रति जिसका दृष्टिकोण सहज रूप में विकसित हो पाता है, उन पर इन तमाम कारणों का असर सीमित या न के बराबर पड़ता है।

मुझे पता नहीं कि बच्चों के जो सामाजिक क्लीनिक खोले गए हैं वहाँ नियमित रूप से जाने का छोटे चोरों पर क्या असर पड़ता है। मैं इतना भर जानता हूँ कि उनके तौर-तरीके कठोर नहीं हैं और वहाँ के सामाजिक कार्यकर्ता बच्चों को समझने की कोशिश करते हैं। उन पर नैतिक फैसले नहीं देते, न ही चरित्र सुधारने के नाम पर उन्हें डाँटते-फटकारते हैं। पर वहाँ काम करने वाले बाल-मनोवैज्ञानिक व प्रोबेशन अधिकारियों के प्रयास मानसिक रूप से बीमार बच्चों के घर द्वारा बाधित होते हैं। लगता है सफलता तब ही मिलती है जब मनोवैज्ञानिक और अधिकारी बच्चे के प्रति माँ-बाप का आचरण बदल पाते हैं। क्योंकि ये छोटे चोर दरअसल हमारे बीमार समाज की बीमारी के प्रतीक हैं। व्यक्तिगत स्तर पर चाहे कितना भी इलाज क्यों न किया जाए, वह एक खराब घर, कच्ची बस्ती की गलियों और एक विपन्न परिवार का असर धो नहीं सकेगा।

यह बिल्कुल सच बात है कि पाँच से पन्द्रह साल के अधिकांश बच्चों को ऐसी शिक्षा मिल रही है जो सिर्फ दिमाग को सम्बोधित करती है। उनके भावनात्मक जीवन से किसी का कोई सरोकार नहीं होता। जबकि किसी मनोरोगी बच्चे में भावनात्मक उतार-चढ़ाव ही उसे चोरी करने पर मजबूर करता है। स्कूल में पढ़ाए जाने वाले विषयों का ज्ञान या अज्ञान उसके अपराध में कोई भूमिका नहीं निभाता।

सीधा-सादा सच यह है कि कोई भी सुखी व्यक्ति लगातार कुछ चुराने पर मजबूर नहीं होता। जो सवाल आदतन चोरी करने वाले बच्चे के सन्दर्भ में पूछे जाने चाहिए वे हैं : उसकी पृष्ठभूमि क्या है? क्या उसका घर-परिवार सुखी हैं? क्या उसके माता-पिता उससे हमेशा सच बोलते रहे हैं? धर्म या सेक्स को लेकर उसके मन में अपराधबोध तो नहीं है? क्या उसे लगता है कि उसके माता-पिता उससे प्यार नहीं करते? उसे चोर बनाने के लिए उसके भीतर का कौन-सा नरक

ज़िम्मेदार है? ज़ाहिर है कि हमारे जज उसे जिस नरक में ठूँसेंगे वह उसके आन्तरिक नरक को खत्म नहीं कर सकेगा।

मानसिक इलाज किशोर चोरों की समस्याओं का समाधान कर पाए यह आवश्यक नहीं है। इससे बच्चे को मदद ज़रूर मिलेगी। शायद वह अपने कुछ भयों या नफरतों से मुक्त भी हो पाएगा। पर जब तक नफरत का बीज उसके वातावरण में बना रहेगा, वह किसी भी वक्त अपनी पुरानी स्थिति में लौट सकता है। पर अगर उसके साथ उसके माता-पिता को भी मानसिक इलाज दिया जाए तो सम्भवतः अधिक सफलता मिलेगी।

मेरे पास एक समय एक बड़ा सा बच्चा था जिसकी मानसिक आयु दो या तीन साल की ही थी। वह दुकानों से चोरी करता था। मैंने सोचा कि पहले दुकानदार को आगाह कर मैं उसके साथ दुकान में जाऊँ और उसकी मौजूदगी में कुछ चुराऊँ। उस लड़के की नज़र में मैं उसके पिता के समान भी था और खुदा भी। मेरा विचार यह था कि उसका पिता उससे नाखुश था और चोरी का कारण भी शायद यही था। मैंने सोचा कि अगर वह अपने नए पिता-खुदा को चोरी करते देखेगा तो चोरी के बारे में फिर से विचार करेगा। मेरी अपेक्षा यह थी कि वह मेरी चोरी का ज़ोरदार विरोध करेगा।

किसी मनोरोगी बच्चे को उसकी चोरी की आदत से छुटकारा दिलाने का मुझे एक ही उपाय दिखता है - उसका अनुमोदन करना। मनोरोग विरोधाभास से उपजे दबाव का परिणाम है, जहाँ बच्चे को यह कहा गया हो कि उसे किसी चीज़ को चाहना नहीं चाहिए, जिसे दरअसल वह चाहता है। मैंने पाया है कि ऊपर से लादी गई आत्मा की आवाज़, जब ढीली पड़ती है तो बच्चे अधिक खुश और बेहतर बन पाते हैं। बच्चे को उस आत्मा की आवाज़ से मुक्त कर दीजिए और उसकी चोरी करने की आदत भी सुधर जाएगी।

आपराधिक प्रवृत्ति

बन्दूकों और औज़ारों की तरह हाथ में पहने जाने वाले पीतल के दस्तानों के इस युग में अधिकारी बाल अपराध को लेकर पूरी तरह उलझे हुए हैं, और उसे रोकने के लिए कुछ भी करने को तैयार हैं। अखबारों में आए दिन इस समस्या से निपटने के तमाम सुझाव छपते हैं। किशोरों को सुधारगृहों में भेजना एक मुश्किल तरीका है, जहाँ ड्रिल और सज़ा के कठोर नियम हों। मैंने एक चित्र देखा था, जिसमें लड़कों को भारी लट्ठे कन्धों पर रखवाकर कवायद करवाई जा रही थी। ऐसी जगहों में किसी के कोई अधिकार माने ही नहीं जाते।

मैं मानता हूँ कि ऐसे नरक में कुछ महीने गुज़ारने पर कुछ सम्भावित अपराधी रोके जा सकते हैं। पर ऐसा करना समस्या की जड़ तक नहीं पहुँचता। बल्कि भय यह है कि वह किशोरों को स्थाई रूप से समाज से नफरत करने वालों में बदल दे।

आज से तीस साल पहले होमर लेन ने *लिटिल कॉमनवैल्थ* नामक सुधारगृह द्वारा सिद्ध कर दिया था कि बाल-अपराधियों को प्रेम से जीता जा सकता है, उनके पक्ष की सत्ता द्वारा जीता जा सकता है। लेन ने लंदन की अदालत से उन लड़के-लड़कियों को छाँटा जो पूरी तरह असामाजिक थे, गुण्डों या ठगों के रूप में अपनी पहचान पर उन्हें घमण्ड था। ऐसे 'लाइलाज' बच्चे *लिटिल कॉमनवैल्थ* में आए जहाँ उन्हें स्व-शासित समुदाय, स्नेह और अनुमोदन मिला। समय के साथ ये बच्चे नेक और ईमानदार नागरिक बने। उनमें से कई को मैं अपना दोस्त मानता था।

अपराधी बच्चों को समझने और उनसे निपटने में लेन बेमिसाल था। वह उन्हें इसलिए सुधार सका क्योंकि वह उन्हें लगातार प्यार और समझ देता रहा। उसने हरेक अपराध कृत्य में छिपे उद्देश्य तलाशे क्योंकि उसका विश्वास था कि हरेक अपराध के पीछे मूलतः कोई नेक इरादा रहा होगा। उसने पाया कि बच्चों से कोरी बातचीत बेकार है। इससे किए कामों की गिनती मात्र होती है। उसका मानना था कि अगर किसी बच्चे का सामाजिक आचरण खराब हो तो उसे अपनी इच्छाओं को भरपूर जी लेने देना चाहिए। उसके पास आए बच्चों में से एक, जाबेज़ ने, एक बार सारे प्याले-प्लेटें तोड़ डालने की नाराज़गी भरी इच्छा जताई। लेन ने उसे लोहे का सरिया थमाया और चालू हो जाने को कहा। जाबेज़ ने अपनी भड़ास निकाली। पर अगले ही दिन वह लेन के पास आया और कोई ज़िम्मेदारी भरे और अधिक वेतन वाले काम की माँग की। लेन ने जानना चाहा कि उसे ज़्यादा पैसों की ज़रूरत क्यों है। जाबेज़ ने कहा, "मैं उन प्याले-प्लेटों की कीमत चुकाना चाहता हूँ।" लेन का स्पष्टीकरण यह था कि तोड़-फोड़ से जाबेज़ के कई अन्तर्विरोध और मानसिक कुण्ठाएँ चरमरा कर ढह गईं। ज़िन्दगी में पहली बार सत्ता में बैठे किसी व्यक्ति ने उसे गुस्सा निकालने के लिए प्याले तोड़ने पर प्रोत्साहित किया। इस कृत्य का उस पर सकारात्मक भावनात्मक असर हुआ होगा।

होमर लेन की *लिटिल कॉमनवैल्थ* से जुड़े सभी बाल-अपराधी शहर की कुख्यात कच्ची बस्तियों से थे। पर मैंने उनमें से एक के बारे में भी यह नहीं सुना कि वे सुधरने के बाद गुण्डागर्दी की ज़िन्दगी की ओर लौटे। मैं लेन के उपाय को प्यार की राह कहता हूँ। और किसी अपराधी को *नाटकीय सज़ा देने* को नफरत का रास्ता। नफरत ने किसी के, किसी भी मर्ज़ का कभी इलाज नहीं किया। मेरा निष्कर्ष यही है कि नाटकीय तरीका किसी किशोर को सुधार नहीं सकेगा। मैं यह बखूबी जानता हूँ कि अगर आज मैं एक जज होता और मेरे सामने एक अकड़ा, किशोर अपराधी होता तो मुझे नहीं सूझता कि मैं उसका क्या करूँ? मुझे यह कहते शर्म

आती है कि आज हमारे देश में *लिटिल कॉमनवैल्थ* जैसा कोई दूसरा सुधारगृह नहीं है। लेन की 1925 में मृत्यु हो गई थी और हमारी सरकार ने इस अनोखे इन्सान से कुछ भी नहीं सीखा।

फिर भी कहना होगा कि हाल के चन्द वर्षों में हमारे प्रोबेशन अधिकारियों ने बाल-अपराधियों को समझने की वास्तविक इच्छा जताई है। वकीलों के विरोध के बावजूद मनोवैज्ञानिकों ने भी आम जनता को यह सिखाया है कि बाल-अपराध का कारण बदमाशी नहीं बल्कि रोग है, जिसमें रोगी को समझ और सम्वेदनशीलता की ज़रूरत होती है। हवा का रुख नफरत की ओर न होकर प्रेम की ओर है। अटूट नैतिक नाराज़गी के बदले समझने की कोशिश की ओर है। यह हवा धीमी है। पर धीमी हवा भी कुछ संक्रमण तो बहा ले जा सकेगी। समय के साथ इसका वेग बढ़ेगा।

मुझे कोई भी ऐसे प्रमाण नहीं मिले हैं जिससे यह सिद्ध हो कि हिंसा, या क्रूरता, या नफरत से किसी व्यक्ति को अच्छा बनाया जा सका है। एक लम्बे अर्से तक मैंने कई समस्यात्मक बच्चों के साथ काम किया है, जिनमें कई बाल-अपराधी भी थे। मैंने देखा कि वे कितने दुखी और नफरत से भरे होते हैं। मेरे प्रति वे अहंकारी और श्रद्धाहीन व्यवहार करते हैं, क्योंकि मैं एक शिक्षक हूँ, पिता की जगह हूँ, उनका दुश्मन हूँ। मैंने उनकी तनावपूर्ण नफरत और उनका अविश्वास झेला है। पर समरहिल में ये सम्भावित बाल-अपराधी स्वशासित समुदाय में खुद पर शासन करते हैं। वे सीखने और खेलने के लिए स्वतंत्र हैं। जब चोरी करते हैं तो पुरस्कार पाने की सम्भावना भी रहती है। उन्हें कोई उपदेश की घुट्टी नहीं पिलाता, इहलौकिक या पारलौकिक सत्ता का भय नहीं दिखाता। कुछ ही सालों में ये नफरत से भरे बच्चे प्रसन्न सामाजिक प्राणियों के रूप में वापस दुनिया में लौटते हैं। जहाँ तक मुझे पता है, समरहिल में जिन बाल-अपराधियों ने सात साल बिताए हों, उनमें से एक भी जेल नहीं भेजा गया है, न उसने कभी बलात्कार किया है, या असामाजिक व्यक्ति बना है। उन्हें मैंने नहीं सुधारा है, उन्हें सुधारने वाला है वातावरण। समरहिल का वातावरण विश्वास देता है, सुरक्षा देता है। इसमें सम्वेदनशीलता है, यहाँ दोषारोपण नहीं होता, यहाँ कोई किसी पर फैसला नहीं सुनाता।

समरहिल के बच्चे स्कूल से निकलने पर न तो अपराधी बनते हैं, न ही गुण्डाटोली के सदस्य। क्योंकि उन्हें बिना भय, सज़ा, और उपदेशों के, गुण्डागर्दी की सहज वृत्तियों को जी लेने का अवसर दिया जाता है। उन्हें एक स्थिति से विकसित हो स्वाभाविक रूप से दूसरी स्थिति में पहुँचने की छूट दी जाती है।

मुझे पता नहीं कि किसी वयस्क अपराधी की प्रेम के प्रति क्या प्रतिक्रिया होगी।

निश्चित है कि चोरी के ईनाम से उसका इलाज नहीं हो पाएगा। यह बात मुझे उतनी ही पक्की तरह पता है जितनी यह बात कि उसे जेल भेजने से भी उसका इलाज नहीं किया जा सकेगा। इलाज की आशा तभी हो सकती है जब अपराधी की उम्र कम हो। फिर भी पन्द्रह साल के किशोर को भी अगर आज़ादी दी जाए तो वह सुधरकर अच्छा नागरिक बन सकता है।

एक बार समरहिल में एक बारह साल का बच्चा आया। उसे उसके दुराचरण के कारण कई स्कूलों से निकाला जा चुका था। यही बच्चा हमारे यहाँ एक प्रसन्न, रचनात्मक व सामाजिक बच्चे में बदला। अगर उसे किसी सुधारगृह में भेजा जाता, तो वहाँ की दमनकारी सत्ता के नीचे वह निश्चित रूप से खत्म हो जाता। अगर किसी समस्यात्मक बच्चे के लिए आज़ादी इतना कुछ कर सकती है, तो फिर उन लाखों-लाख 'सामान्य' बच्चों के लिए आज़ादी क्या कुछ नहीं कर सकती जो पारिवारिक दमन के कारण विकृत हो जाते हैं।

तेरह वर्षीय टॉमी एक बड़ी भारी समस्या था। वह चोरी करता था, तोड़-फोड़ करता था। एक बार छुट्टियों के दौरान वह घर नहीं जा सका, हमने उसे स्कूल में ही रखा। दो महीनों तक वह समरहिल में अकेला रहा। उसका आचरण बढ़िया था। हमें खाने-पीने की चीज़ों और रुपए-पैसों पर ताला-चाबी नहीं लगाने पड़े। पर जैसे ही उसकी टोली लौटी उसने भण्डार गृह पर धावा बोला। इससे सिद्ध होता है कि एक व्यक्ति के रूप में और एक समूह के सदस्य के रूप में बच्चा दरअसल दो भिन्न व्यक्ति होता है।

सुधारगृहों के शिक्षक मुझे अक्सर बताते हैं कि असामाजिक किशोर की बढ़त सामान्य बच्चों की तुलना में कम होती है। मैं कहना चाहूँगा कि भावनात्मक रूप में भी वे सामान्य से कम होते हैं। एक समय था जब मैं यह मानता था कि बाल-अपराधी दरअसल एक कुशाग्र बच्चा होता है जिसकी रचनात्मक ऊर्जा असामाजिक कृत्यों में इसलिए झलकती है, क्योंकि उसे अभिव्यक्त करने का कोई रचनात्मक तरीका उसके पास नहीं होता। उसे कुण्ठाओं और अनुशासन से मुक्त करें, तो वह ज़रूर चतुर, रचनात्मक, यहाँ तक कि कुशाग्र बच्चा बन सकेगा। पर मैं गलत था, दुखद रूप से गलत था। बाल-अपराधियों के साथ सालों-साल बिताने के बाद मुझे एक ही बच्चा याद आता है जो बाद में कुछ कर गुज़र सका। इनमें से कई का आचरण और बेईमानी ज़रूर सुधर सकी और वे नियमित नौकरियाँ करने लगे। पर एक भी अच्छा विद्वान या कलाकार, कुशल इंजीनियर या बढ़िया अभिनेता नहीं बना। जब उनकी असामाजिक प्रवृत्तियाँ खत्म हो गईं तो अधिकांश वयस्क मरे-मरे से और उबाऊ बने। उनमें किसी तरह की, आगे बढ़ने की इच्छा नहीं थी।

जब भी बच्चों को अज्ञानी माँ-बाप के साथ खराब वातावरण में जीना पड़ता है तो

वे अपनी असामाजिकता को पूरी तरह जी नहीं पाते। अगर गरीबी और कच्ची बस्तियाँ खत्म कर दी जाएँ, माता-पिता का अज्ञान मिटा दिया जाए तो सुधारगृहों की ज़रूरत कम हो जाएगी।

बाल-अपराधों का इलाज दरअसल समाज के अपने नैतिक अपराधों और उनके प्रति नैतिक उदासीनता के इलाज से ही हो सकता है। हमें हमारे सामने उपस्थित दो पक्षों में से एक को चुनना है। हम चाहें तो अपने बाल-अपराधियों को घृणा भरे नरक के रास्ते धकेलें या फिर प्रेम की राह चुनें।

मुझे कुछ पल यह कल्पना करने दीजिए कि मैं आंतरिक मामलों का सचिव हूँ और मेरे पास शिक्षा के क्षेत्र में बदलाव लाने की असीमित ताकत है। मुझे एक सामान्य कार्यक्रम, या कहें स्कूलों के लिए एक पंच-वर्षीय योजना बनाने दें।

सचिव के रूप में मैं सारी तथाकथित सुधार शालाओं को खत्म कर दूँगा और उनके बदले पूरे देश में शैक्षणिक बस्तियाँ बसाऊँगा। मैं शिक्षकों और आवासगृह माताओं के लिए विशेष प्रशिक्षण केन्द्र खुलवाऊँगा। हरेक बस्ती पूरी तरह स्वशासित होगी। शिक्षकों को विशेष सुविधाएँ नहीं होंगी। वे वही खाएँगे, वैसे ही रहेंगे जैसे उनके छात्र-छात्राएँ। बच्चे जो भी सामुदायिक काम करेंगे उसके लिए उन्हें मज़दूरी मिलेगी। इन बस्तियों का नारा होगा आज़ादी। किसी किस्म का धर्मोपदेश, नैतिक उपदेश, या सत्ता वहाँ नहीं होगी।

धर्म को इसलिए दूर रखूँगा क्योंकि धर्म सिर्फ बोलता है, उपदेश देता है, भावनाओं का शुद्धिकरण और दमन करता है। धर्म पाप की कल्पना वहाँ करता है, जहाँ दरअसल पाप न हो। वह स्वतंत्र इच्छाशक्ति को मानकर चलता है जबकि कई बच्चे अपनी प्रवृत्तियों के इस कदर गुलाम होते हैं कि उनकी इच्छाशक्ति स्वतंत्र रह ही नहीं पाती।

धार्मिक अनुकूलन के बदले मैं, भावनाओं को, बिना क्रूरता और अन्याय के, प्रेम से अनुकूलित करने की पैरवी करूँगा। शैक्षणिक बस्तियों में इस आदर्श को पाने का एक तरीका होगा - जहाँ तक हो सके बिना सत्ता की नफरत के नौजवानों को अपने हाल पर छोड़ना। मेरा अनुभव बताता है कि यही अकेला रास्ता है।

शिक्षकों को अपने छात्र-छात्राओं के समान बनना सिखाया जाएगा, उनसे श्रेष्ठ बनना नहीं। सम्मान के लबादे और व्यंग्य का वे त्याग करेंगे। वे किसी तरह का भय नहीं जगाएँगे। उन्हें असीमित धैर्यशील स्त्री-पुरुष बनना होगा, जो दूर तक देख सकें। अन्ततः आने वाले परिणामों में उन्हें आस्था रखनी होगी।

शिक्षकों की मुख्य विशेषता होगी अपने छात्र-छात्राओं में आस्था दर्शा पाने की क्षमता। बच्चों के प्रति शिक्षकों का व्यवहार सम्मानजनक होगा, वे उनसे चोर-

उचक्कों सा व्यवहार नहीं करेंगे। पर साथ ही उन्हें व्यावहारिक भी बनना पड़ेगा। वे किसी आदतन चोरी करने वाले को समुदाय के कोषाध्यक्ष की ज़िम्मेदारी नहीं सौपेंगे। शिक्षकों को उपदेश झाड़ने के लोभ पर काबू पाना होगा। उन्हें यह सीख लेना होगा कि शब्दों से अधिक प्रभावशाली, कृत्य होते हैं। उन्हें प्रत्येक बाल/किशोर अपराधी का इतिहास जानना होगा, उसकी *पूरी* पृष्ठभूमि को समझना होगा।

बुद्धिमानी जाँचने वाले परीक्षणों को इस बस्ती में गौण स्थान दिया जाएगा। क्योंकि वे महत्वपूर्ण सम्भावनाओं की ओर इंगित नहीं कर पाते। वे भावनाओं, रचनात्मकता, मौलिकता और कल्पनाशक्ति का सही आकलन नहीं कर पाते।

शिविर का वातावरण जेल जैसी संस्था का न होकर, अस्पताल जैसा होगा। जिस प्रकार कोई चिकित्सक किसी यौन रोग से पीड़ित व्यक्ति के प्रति नैतिक दृष्टिकोण नहीं अपनाता, उसी प्रकार शिविर का स्टाफ भी यह मानकर चलेगा कि सभी अपराधी रोगी हैं। अस्पताल से एक ही अर्थ में यह बस्ती फर्क होगी। यहाँ सामान्यतः किसी को कोई दवाएँ नहीं दी जाएँगी। मनोचिकित्सा से सम्बंधित दवाएँ भी नहीं। इलाज वातावरण में मौजूद वास्तविक प्रेम का ही नतीजा होगा। स्टाफ को मानवीय स्वभाव में भी वास्तविक आस्था दर्शानी होगी। यह सच है कि कई दृष्टान्तों में असफलता ही हाथ लगेगी। कुछ लोग लाइलाज सिद्ध होंगे। समाज को उनसे निपटना होगा। पर ऐसे लोगों की संख्या बहुत कम होगी। अधिकाँश बाल-अपराधी प्रेम, सहिष्णुता व विश्वास के वातावरण में सुधर सकेंगे।

अविश्वासी लोगों को मैं होमर लेन और एक किशोर अपराधी के वाकये की याद दिलाना चाहूँगा, जिसने आजीवन कारावास भुगत रहे एक कैदी को जूते बनाने की एक नई मशीन लाने न्यूयॉर्क भेजा। वह नई मशीन के पूरे हिसाब-किताब के साथ लौटा। वॉर्डन ने पूछा, "तुम्हें न्यूयॉर्क में भागने का नायाब मौका मिला था, तुमने उसका फायदा क्यों नहीं उठाया।" कैदी सिर खुजलाता, कुछ देर सोचता रहा, तब बोला, "पता नहीं, शायद इसलिए क्योंकि आपने मुझ पर भरोसा किया।"

जेल और सज़ा, इन्सानों में इस अनूठी आस्था की जगह नहीं ले सकते। किसी उलझे हुए व्यक्ति के लिए इस विश्वास का अर्थ यह होता है कि कोई उन्हें नफरत की जगह प्यार दे रहा है।

बच्चे का सुधार

इलाज, उपचार करने वाले से अधिक बीमार पर निर्भर होता है। उपचारक के पास जाने वाले तमाम लोगों में असफलता इसलिए होती है क्योंकि उन्हें उनके रिश्तेदार घेर-घारकर उपचारक के पास भेजते हैं। अगर कोई पुरुष अपनी पत्नी को मनोविश्लेषण के लिए जाने पर मजबूर करता है, तो उसकी पत्नी मान तो जाती है लेकिन गुस्सा बना रहता है। *मेरा पति मुझे नापसन्द करता है, मुझमें बदलाव लाना चाहता है। मुझे यह बात अच्छी नहीं लग रही है।*

यही परेशानी उस वक्त भी आती है जब किशोर अपराधी को जबरन उपचार के लिए भेजा जाता है। किशोरों या वयस्कों का उपचार तब ही कारगर हो सकता है, जब रोगी स्वयं इलाज चाहे।

अधिकांश बाल-अपराधियों को अगर सिर्फ आज़ादी दी जाए, उपचार न भी जोड़ा जाए, तो भी उनकी अधिकतर समस्याएँ सुलझ सकेंगी। मैं *आज़ादी* की बात कह रहा हूँ, स्वेच्छाचारिता की नहीं, भावुकता की भी नहीं। पर जो रोगी हैं वे केवल आज़ादी से नहीं सुधारे जा सकेंगे। जिन लोगों का मानसिक विकास रुक गया है, उन पर आज़ादी का कोई असर नहीं होगा। पर बच्चों के छात्रावास में यह ज़रूर कारगर होगी, बशर्ते उसका उपयोग हर समय हो।

कुछ साल पहले एक लड़का मेरे पास भेजा गया। वह पक्का चोर था और चोरी भी चतुराई से करता था। उसके आने के एक हफ्ते बाद मेरे पास लिवरपूल से एक फोन आया, "मैं फलाँ-फलाँ एक नामी-गिरामी नाम बोल रहा हूँ। मेरा भतीजा आपके स्कूल में है। उसने पत्र लिखकर मुझसे पूछा है कि वह चंद दिनों के लिए मेरे पास आ सकता है क्या? आपको कोई आपत्ति तो नहीं है?"

बिल्कुल नहीं, मैंने जवाब दिया, पर उसके पास पैसे तो नहीं हैं। उसका किराया कौन देगा? बेहतर हो कि आप उसके माता-पिता से सम्पर्क करें।

अगली दोपहर लड़के की माँ का फोन आया कि अंकल डिक ने उनसे बात की है। उनकी ओर से आर्थर लिवरपूल जाना चाहे तो जा सकता है। किराया भी पता कर लिया गया है। वह 28 शिलिंग होता है। क्या मैं फिलहाल आर्थर को 2 पाउण्ड 10 शिलिंग दे सकता हूँ? दोनों ही फोन स्थानीय फोन-बूथ से किए गए थे। आर्थर ने अपने वृद्ध अंकल और अपनी माँ की आवाज़ों की हूबहू नकल की थी। उसने

मुझे फाँस लिया। इससे पहले कि मैं समझ पाता कि मैं उल्लू बनाया गया हूँ, मैं उसे पैसे दे चुका था।

मैंने अपनी पत्नी से इस पर चर्चा की। हम दोनों सहमत थे कि उससे पैसे वापस लेना गलत होगा, क्योंकि यही तो उसके साथ अब तक होता आया था। मेरी पत्नी ने पुरस्कार की बात सुझाई। मैं देर रात उसके कमरे में गया।

"आज तो तुम्हारा भाग्य बड़ा अच्छा है?" मैंने कहा।

"बेशक," उसका जवाब था।

मैंने कहा, "लेकिन जितना तुम सोच रहे हो, उससे भी ज़्यादा अच्छा रहा, तुम्हारे लिए यह दिन।"

"क्या मतलब?" उसने जानना चाहा।

"अरे, तुम्हारी माँ का दुबारा फोन आया था," मैंने सहजता के साथ जोड़ा। "उन्होंने कहा कि किराए के बारे में उनसे गलती हो गई है। वह 28 शिलिंग नहीं 38 शिलिंग है।" और मां ने तुम्हें 10 शिलिंग और देने को कहा है। यह कहकर मैंने उसके बिस्तर पर दस शिलिंग का नोट उछाला और वह कुछ कहे इससे पहले ही चलता बना।

अगली सुबह वह लिवरपूल गया। जाते वक्त वह एक खत छोड़ गया जो मुझे उसके जाने के बाद दिया जाना था। उसकी शुरुआत थी, "प्रिय नील, तुम मुझसे बेहतर अभिनेता हो।" घटना के कई सप्ताह बाद तक वह मुझसे पूछता रहा कि मैंने उसे और पैसे क्यों दिए थे।

एक दिन मैंने उसे जवाब दिया, "जब मैंने पैसे दिए तो तुम्हें क्या लगा।" वह कुछ देर ध्यान से सोचता रहा, फिर धीमे से बोला, "पता है, मुझे ज़बरदस्त धक्का लगा। मैंने खुद से कहा कि मेरी ज़िन्दगी में यह पहला इन्सान है जो मेरे पक्ष में है।" यह उदाहरण है उस लड़के का जिसे उस प्रेम का अहसास हुआ, जिसमें अनुमोदन का पुट था। अमूमन यह चेतना काफी देर से आती है। जिसका इलाज किया जा रहा हो उसे इलाज के प्रभाव का अक्सर कुछ हल्का-सा अहसास ज़रूर होता है। पर वह कई महीनों बाद होता है।

पिछले दिनों मेरा बिगड़ैल बाल-अपराधियों से काफी पाला पड़ा। मैंने उन्हें हमेशा चोरी के बाद पुरस्कृत किया। कई बच्चों को, जब वे सुधर गए, तो इस बात का अहसास हुआ कि मेरी ओर से जो अनुमोदन जताया गया उससे उन्हें मदद मिली।

बच्चों के साथ काम करते समय मनोवैज्ञानिक गहराइयों में उतरना पड़ता है। उसके आचरण के पीछे छिपे गहरे उद्देश्य तलाशने पड़ते हैं। कोई लड़का असामाजिक है, पर आखिर क्यों? स्वाभाविक ही है कि उसकी हरकतें आड़े आती हैं, हमें उनसे

खीज होती है। सम्भव है वह दादागिरी करता हो, शायद चोर हो, शायद दूसरों को पीड़ा देने में उसे मज़ा आता हो। पर क्यों भला? शिक्षक खीझकर उस पर चीखेगा, उसे सज़ा देगा, उसे बुरा-भला कहेगा। पर शिक्षक की खीझ ज़ाहिर हो जाने के बावजूद समस्या जस की तस बनी रहेगी। कठोर अनुशासन द्वारा शिक्षा की जो माँग फिलहाल फिर से सिर उठा रही है, उससे केवल लक्षणों का इलाज हो सकेगा, पर अन्ततः उसका प्रभाव शून्य रहेगा।

माँ-बाप एक बच्ची को समरहिल लाते हैं, जो झूठ बोलती है, चोरी करती है, जो दूसरों की बुराई करती है, चुगली लगाती है। वे उसके दोषों की लम्बी फेहरिस्त मुझे बताते हैं। पर बच्ची को यह जताना भारी भूल होगी कि मुझे उसके बारे में कुछ बताया गया है। मुझे उस वक्त तक धीरज रखना होगा, जब वह बच्ची खुद स्कूल के, मेरे व दूसरों के प्रति आचरण से, अपने बारे में बताए।

सालों पहले एक लाइलाज, समस्यात्मक बच्चा मेरे पास लाया गया। उसके माता-पिता का ज़ोर था कि उसे किसी मनोचिकित्सक के पास जाँच के लिए ले जाया जाए। मैंने विशेषज्ञ से अलग से आधा घण्टा बात की। उन्हें सब कुछ विस्तार से समझाया। तब बच्चे को अन्दर बुलाया गया। विशेषज्ञ महोदय ने छूटते ही कहा, "नील साहब बता रहे हैं कि तुम एक बेहद खराब लड़के हो।" यह *उनकी* मनोचिकित्सा थी।

इसी तरह की अज्ञानी, पूरी तरह से गलत विधि का सामना मुझे बार-बार करना पड़ा है। एक मेहमान ने एक बार एक बच्चे से, जो अपने कद को लेकर कुण्ठित था कहा, "उम्र के हिसाब से तुम्हारा कद काफी कम है।"

किसी दूसरे मेहमान ने एक लड़की से कहा, "तुम्हारी बहन तो बड़ी चतुर है, है ना?" बच्चों से व्यवहार की कला की परिभाषा है *यह जानना, कि क्या नहीं करना चाहिए*।

पर दूसरी ओर बच्चे को यह जताना भी ज़रूरी है कि आपको उल्लू नहीं बनाया जा सकता। आप किसी बच्चे को लगातार अपनी टिकटें चुराने दें, तो यह निरर्थक होगा। यह कहना कि, "तुम्हारी माँ ने बताया था कि तुम टिकट चुराते हो" से फर्क है, "मैं जानता हूँ कि तुमने मेरी टिकटें ले ली हैं।"

बच्चों के माता-पिता को उनके बारे में कुछ भी लिखने से मैं घबराता हूँ। डरता हूँ कि कहीं वह पत्र इधर-उधर पड़ा न रह जाए और छुट्टियों में घर आए बच्चे के हाथ लग जाए। पर इससे भी ज़्यादा डर इस बात का लगता है कि कहीं वे बच्चे को खत में यह न लिखें कि, "नील ने बताया है कि तुम कक्षाओं में बिल्कुल नहीं जा रहे हो, और तुमने सबकी नाक में दम कर रखा है।" अगर ऐसा होता है, तो

बच्चा मुझ पर कभी भी विश्वास नहीं करेगा। सो अमूमन मैं जितना कम बता सकता हूँ, उतना बताता हूँ। केवल जब माँ-बाप बिल्कुल भरोसेमन्द और जागरूक होते हैं, तब ही मैं कुछ विस्तार से चर्चा करता हूँ।

मैं सामान्यतः बच्चे के पक्ष में सही काम करता हूँ, क्योंकि मेरे लम्बे अनुभव ने मुझे सही रास्ता भी बताया है। इसमें मेरी कोई चतुराई नहीं है, न यह कोई जन्मजात गुण है। यह केवल अभ्यास की बात है। शायद कहीं इस बात का भी असर पड़ता हो कि मैं अनावश्यक चीज़ों की ओर से आँखें मूँद लेता हूँ।

बिल एक नया लड़का है। वह किसी लड़के के पैसे चुराता है। पीड़ित लड़का मुझसे पूछता है, "अगली आम सभा में मैं उस पर आरोप लगाऊँ? बिना सोचे मैं कहता हूँ, "ना, मुझ पर छोड़ दो।" मैं उससे बाद में तर्क-वितर्क कर सकता हूँ। बिल के लिए आज़ादी की बात नई है। वह इस नए वातावरण का पूरी तरह अभ्यस्त नहीं हो सका है। वह खूब कोशिश कर रहा है कि वह लोकप्रिय हो, उसके साथी उसे स्वीकार करें। इसी चक्कर में वह शान बघारता, दिखावा करता फिर रहा है। उसकी चोरी की बात सार्वजनिक करने का मतलब होगा, उसमें शर्म और भय जगाना। सम्भव है कि इससे बच्चे में विरोध भावना जगे और तब असामाजिक व्यवहार भड़क उठे। इसके विपरीत अगर वह अपने पिछले स्कूल में, गुण्डा नेता रहा हो जिसे शिक्षकों के विरुद्ध अपनी खुराफातों पर नाज़ हो तो वह आरोप लगने के बाद और अधिक इतरा सकता है। यह जताने की कोशिश कर सकता है कि वह कितना महान है।

किसी दूसरे समय कोई बच्चा कहता है, "मैं मेरी पर आरोप लगाऊँगा कि उसने मेरे क्रेयॉन चुराए हैं" तो मैं कोई खास रुचि नहीं लेता हूँ। इसलिए, क्योंकि मैं जानता हूँ कि मेरी स्कूल में दो वर्षों से है और परिस्थिति से खुद निपटने की ताकत उसमें है।

तेरह साल का एक नया लड़का जो हमेशा से पढ़ाई से नफरत करता रहा है, समरहिल आता है। कुछ हफ्ते वह जी भरकर मटरगश्ती करता है। तब ऊबकर मेरे पास आता है और कहता है, "मैं पढ़ाई के लिए जाऊँ?" मैं जवाब दे सकता हूँ, "इससे मेरा क्या लेना-देना?" यह मैं इसलिए कहता हूँ क्योंकि उसे अपनी आन्तरिक इच्छाओं को तलाशना है। पर सम्भव है कि किसी दूसरी बच्ची से मैं कहूँ, "हाँ, अच्छा विचार है" क्योंकि सम्भव है कि उसका घरेलू और स्कूली जीवन एक समय-सारिणी के इर्द-गिर्द चला हो और वह तय नहीं कर सकती हो कि वह क्या चाहती है। मुझे उस वक्त तक इंतज़ार करना होगा, जब तक वह स्वावलम्बी नहीं बन जाती। पर जवाब देते समय मैं इन व्यक्तिगत पक्षों पर कोई सचेत सोच-विचार नहीं करता।

प्रेम का अर्थ है व्यक्ति के पक्ष में होना। प्रेम का अर्थ है अनुमोदन। मैं जानता हूँ कि बच्चे यह धीरे-धीरे समझते हैं कि आज़ादी का मतलब स्वेच्छाचारिता से भिन्न है। पर यह सच्चाई वे समझ सकते हैं, समझते भी हैं। अन्ततः आज़ादी हमेशा कारगर होती है - प्रायः हरेक दृष्टान्त में।

खुशी की राह

फ्रॉयड ने कहा था कि हर तरह का मनोरोग दरअसल यौन भावनाओं के दमन से जन्मता है। सो मैंने खुद से कहा, "मेरे स्कूल में ऐसा नहीं होगा।" "फ्रॉयड ने कहा कि अवचेतन मन, चेतन मन से कहीं अधिक ताकतवर होता है। मैंने कहा, "मेरे स्कूल में हम बुराई नहीं करेंगे, सज़ा नहीं देंगे, नैतिक उपदेश नहीं देंगे। हरेक बच्चे को उसकी अन्तःप्रेरणा के अनुरूप जीने का मौका देंगे।"

धीरे-धीरे मैं समझ पाया कि फ्रॉयड को मानने वाले ज़्यादातर लोग, बच्चे की स्वतंत्रता को न तो समझते हैं और न ही उसमें विश्वास करते हैं। वे आज़ादी को स्वेच्छाचारिता मानने की गलती करते हैं। जिन बच्चों को अपने सा बने रहने की इजाज़त ही नहीं मिली, जिन्होंने दूसरों की आज़ादी का सम्मान करना भी नहीं सीखा, ऐसे बच्चों का वे इलाज कर रहे थे। मेरा पक्का विश्वास है कि फ्रायडियनों ने अपने सिद्धान्त ऐसे ही गड्ड-मड्ड बच्चों पर आधारित किए।

मैंने धीरे-धीरे पाया कि मेरा क्षेत्र, इलाज का न होकर, रोगनिरोध का है। इसका पूरा अर्थ समझने में मुझे सालों लगे। तब पता चला कि समरहिल में आने वाले बच्चे इलाज की वजह से नहीं, बल्कि आज़ादी की वजह से सुधरते हैं। मैंने पाया कि मेरा मुख्य काम चुपचाप बैठे रहकर, उस सबका अनुमोदन करना है जिसे बच्चा अपनी कमी मानकर नफरत करता है। अर्थात मुझे बच्चे पर लादे गए उस विवेक को तोड़ना है जो उसमें खुद के प्रति नफरत जगाता है।

जब कोई नया बच्चा आता है और गालियाँ देता है तो मैं मुस्कुराकर कहता हूँ, "जारी रखो, गाली देने में कोई बुराई नहीं है।" यही मैं हस्तमैथुन, झूठ बोलने, चोरी करने और उनकी तमाम दूसरी खुरापातों के लिए भी कहता हूँ जो सामाजिक रूप से गलत मानी जाती हैं।

कुछ समय पहले एक नन्हा हमारे पास आया। वह मुझपर सवालों की झड़ी बरसाने लगा : "उस घड़ी की क्या कीमत दी थी आपने?" "कितने बजे हैं?" "स्कूल का सत्र कब खत्म होगा?" वह बच्चा बड़ा तनावग्रस्त रहता था और कभी अपने सवालों के जवाब सुनता तक नहीं था। मुझे पता था कि वह उस अहम सवाल

से लगातार कतरा रहा था जिसका जवाब दरअसल उसे चाहिए था।

एक दिन वह मेरे कमरे में आया और उसने तमाम सवाल पूछे। मैंने एक भी जवाब नहीं दिया और पढ़ता रहा। दर्ज़न भर सवालों के बाद मैंने नज़रें उठाईं और सहज भाव से कहा, "क्या पूछा तुमने? बच्चे कहाँ से आते हैं?"

वह उठ खड़ा हुआ, उसका चेहरा लाल हो गया। "मुझे यह नहीं जानना है कि बच्चे कहाँ से आते हैं," इतना कहकर वह कमरे से भाग गया।

दस मिनट बाद वह फिर लौटा। "यह टाइपराईटर आपने कहाँ से खरीदा? इस सप्ताह सिनेमाघर में कौन सी फिल्म चल रही है? आपकी उम्र क्या है?" (*कुछ देर चुप्पी के बाद*), "बता भी दीजिए कि बच्चे आते *भला* कहाँ से हैं?"

मैंने उसे सही जवाब दिया उसके बाद वह मुझसे कोई सवाल पूछने नहीं आया।

दिमागी कचरे की सफाई मेहनत का काम है। इस तरह का काम इसलिए सहनीय बन जाता है क्योंकि किसी दुखी बच्चे को सुखी और आज़ाद बच्चे में बदलते देखना आनन्ददायक है। पर इसका एक दूसरा पहलू भी है। जहाँ अथक परिश्रम के बाद भी सफलता हाथ नहीं लगती। साल भर एक बच्चे के साथ काम करें और खुश हों कि उसकी चोरी की आदत छूट गई है। और तब अचानक वह फिर से चोरी करे और शिक्षक पूरी तरह से हताश हो जाए। मैंने किसी छात्र के सुधरने पर खुद को बधाई दी ही होगी कि कोई शिक्षक पाँच मिनट बाद ही दौड़ता हुआ आया और उसने बताया, "टॉमी ने फिर चोरी करना शुरू कर दिया है।"

मनोविज्ञान कुछ-कुछ गौल्फ के खेल जैसा है। वहाँ आप खेल के एक चक्कर में दो सौ बार गेंद को मारते हैं, आप नाराज़ होते हैं, गुस्से में उसका बल्ला भी तोड़ डालते हैं, पर जैसे ही धूप से चमकती अगली सुबह सामने आती है, आप फिर से दिल में नई आशा लेकर खेलने पहुँचते हैं।

अगर आप किसी बच्चे को कोई अत्यावश्यक सच्चाई बताते हैं या वह अपनी परेशानियाँ आपको बताता है तो आप दोनों के बीच एक अन्तरंग रिश्ता बनता है। यानी वह अपनी सारी भावनाएँ आप पर न्यौछावर करता है। जब मैं किसी छोटे बच्चे के जन्म या हस्तमैथुन के बारे में भ्रान्तियाँ दूर करता हूँ तो एक खास और मजबूत रिश्ता हमारे बीच बनता है। किसी एक समय यह अन्तरण नकारात्मक भी बन सकता है। तब वह नफरत का अन्तरण होता है। पर किसी भी सामान्य बच्चे के साथ यह नकारात्मक चरण अधिक समय नहीं चलता, उसके बाद जल्दी ही प्रेम का अन्तरण प्रारम्भ हो जाता है। बच्चे के अन्तरण जल्दी ही विलय हो जाते हैं। वह कुछ समय बाद मेरे बारे में सब कुछ भूल जाता है और दूसरे बच्चों के साथ भावनात्मक रिश्ते बनाने लगता है। क्योंकि मैं पिता समान हूँ यह अंतरण लड़कियों

में ज़्यादा स्वाभाविक रूप से पनपता है। लेकिन मैं यह नहीं कह सकता हूँ कि लड़कियों में मेरे प्रति हमेशा सकारात्मक अंतरण होता है और लड़कों में नकारात्मक। बल्कि मैंने कई बार लड़कियों की घोर नफरत भी देखी है।

समरहिल में मैं चिकित्सक भी था और मनोवैज्ञानिक भी। पर मुझे धीरे-धीरे समझ आया कि इन दोनों भूमिकाओं को एक साथ नहीं निभाया जा सकता है। मुझे मनोचिकित्सक की भूमिका छोड़ देनी पड़ी क्योंकि अधिकांश छात्र, जो मुझे अपने राज़ बताते हैं, मेरे साथ काम नहीं कर पाते हैं। वे मुझसे खीझने लगते हैं और मेरी आलोचना से भी डरते हैं। अगर मैं किसी एक के बनाए चित्र की तारीफ करता हूँ तो दूसरों को जलन होती है। सच्चाई यह है कि मनोचिकित्सक को स्कूल में रहना ही नहीं चाहिए। उससे सामाजिक मेलजोल रखने में बच्चों की कोई रुचि नहीं होनी चाहिए।

मनोविज्ञान की सभी शाखाओं में अवचेतन की परिकल्पना को स्वीकारा गया है। अर्थात वे यह मानकर चलते हैं कि हम सब में दबी हुई इच्छाएँ, प्रेम और नफरत होती है, जिनके बारे में हमें पता तक नहीं होता। इसलिए किसी भी व्यक्ति का चरित्र चेतन आचरण और अवचेतन आचरण का मिश्रण होता है।

चोरी के मकसद से घर में घुसा नौजवान यह जानता है कि वह पैसे और कीमती चीज़ें पाना चाहता है। पर वह अपने गहरे अवचेतन उद्देश्य को नहीं जानता, जिसके चलते वह पैसे कमाने के बदले चुराने का रास्ता चुनता है। यह उद्देश्य दबा हुआ होता है इसलिए नैतिक भाषण या सज़ा उसे कभी सुधार नहीं सकते। डाँट-फटकार उसके कानों तक पहुँचती है और सज़ा उसका शरीर झेलता है। ये उपदेश और सज़ाएँ बच्चे के अवचेतन उद्देश्यों तक नहीं पहुँचते जो उसके आचरण को नियंत्रित करते हैं।

इसलिए धर्म, उपदेशों के द्वारा बच्चे के अवचेतन मानस तक नहीं पहुँचता। पर अगर उसी बच्चे का पादरी, किसी रात उसके साथ चोरी करने जाए तो जो आत्म-घृणा उसके असामाजिक आचरण के लिए ज़िम्मेदार है, वह पिघलने लगे। ऐसा सहानुभूतिपूर्ण रिश्ता उसे दूसरी तरह से सोचने पर मजबूर करेगा। एक से ज़्यादा बच्चों का इलाज उस समय सम्भव हुआ जब मैंने उनके साथ मिलकर पड़ोसियों की मुर्गी चुराई थी या स्कूल की तिजोरी से पैसे चुराए। जहाँ शब्द नहीं पहुँचते वहाँ कर्म पहुँचता है। यही कारण है कि बच्चे की कई समस्याएँ प्रेम और अनुमोदन से सुलझती हैं। मैं यह नहीं कहता कि जिसे चोरी करने की या दूसरों को पीड़ा देने की बीमारी है वे लोग भी प्यार से सुधर जाएँगे। पर अमूमन प्यार से बच्चों में चोरी, झूठ बोलना और तोड़-फोड़ को सुधारा जा सकता है। मैंने यह करके सिद्ध किया है कि आज़ादी के होने से और नैतिक अनुशासन के न होने से ऐसे तमाम बच्चों

को सुधारा जा सका है जिनका भविष्य जेल ही लगता था।

वास्तविक आज़ादी जो सामुदायिक जीवन में उतरी हो, जैसे समरहिल में, कई लोगों पर वही असर करती है जो किसी व्यक्ति पर मनोविश्लेषण का होता है। इससे अब तक का छुपा उभर आता है। आज़ादी ताज़ी हवा का वह झोंका है जो खुद उसकी आत्मा के और दूसरों के प्रति नफरत को साफ कर देता है।

नौजवानों की इस जद्दोजहद में कोई निष्पक्ष नहीं रह सकता। हमें कोई न कोई पक्ष चुनना ही पड़ता है : सत्ता या आज़ादी, अनुशासन या स्वशासन। आधे-अधूरे कदमों से काम नहीं चलेगा क्योंकि स्थिति काफी खराब है।

हरेक बच्चे को उसके माता-पिता और शिक्षक विरासत में दो में से एक स्थिति दे सकते हैं। एक वह जहाँ उसकी आत्मा मुक्त हो, काम में वह प्रसन्न रहे, दोस्ती में खुश हो, प्रेम में आनन्दित हो। दूसरी स्थिति वह जहाँ वह संघर्षों से जूझता हो, खुद से, मानवता से नफरत करता हो।

प्रसन्नता कैसे दी जा सकती है? मेरा अपना जवाब है : *सत्ता खत्म करें। बच्चे को उसकी तरह बनने दें। उसे इधर-उधर नहीं धकियाएँ। उसे न सिखाएँ। उसे भाषण न पिलाएँ। उसे सुधारने की कोशिश न करें। कुछ भी करने का दबाव उस पर न डालें।* सम्भव है आपका जवाब यह न हो। पर अगर आप मेरे जवाब को नकारेंगे तो एक बेहतर जवाब तलाशने की ज़िम्मेदारी भी आप पर ही है।